जन-समाज की शक्ति

- विश्व में जन-समाज की अवधारणा अधिक पुरानी नहीं है। इसका उद्भव 1989 में यूरोप में नागरिक-क्रांति के साथ हुआ। जल्द ही इसे प्रजातंत्र का अमेद्य अंग माना जाने लगा। अब पूरी तरह से स्वीकार कर लिया गया है कि जन-समाज में सार्वजनिक बहस, आंदोलनों एवं अन्य अहिंसक माध्यमों से दिखाई जाने वाली राजनीतिक क्षमता ही वास्तविक प्रजातंत्र है। इसको चुनौती देने का मतलब आज, प्रजातंत्र से मुँह मोड़ने जैसा है। इतना ही नहीं, बल्कि प्रजातंत्र की सफलता ही एक जागरूक जन-समाज के होने में है।
- पिछले कुछ वर्षों में भारत में जन-समाज के लिए स्थान कम होता दिखाई दे रहा है। सरकार के अंदर न तो जन-आंदोलनों के लिए धैर्य है, और न ही नागरिकों की राजनीतिक क्षमता के प्रति आदर। इस प्रकार के रवैये से सामान्यतः जन-समाज नष्ट होता जाता है। परंतु गुजरात के तीन नौजवानों द्वारा छेडे जन-आंदोलनों ने डूबती नैया की पतवार संभाल ली है। उनके अहिंसक आंदोलनों से जन-समाज फिर से उठ खड़ा हुआ है।
- जिग्नेश मेवानी ने तो अस्तित्व के पहचान की दलित राजनीति को भूमि और व्यवसाय जैसे आर्थिक धरातल से जोड़कर उसे एक सार्थक स्वरूप प्रदान किया है। उन्होंने अपने जय भीम और लाल सलाम जैसे नारों से गुजरात राज्य के विकास के वर्तमान स्वरूप को आड़े हाथों लिया है। भारतीय जनता पार्टी एवं नवउदारवाद पर चोट करती उनकी विचारधारा समाज के गरीब ब्राह्यण, मुस्लिम, दलित और जनजातियों के हितों की पक्षधर है।
- जन-आंदोलन के अन्य पक्षों ने भी कृषि से जुड़ी समस्याओं, रोज़गार, भू-स्वामित्व आदि को अपना मुद्दा बनाया है। इसमें लोगों की जीविका के लिए उपयुक्त रोजगार, शिक्षा के गिरते स्तर तथा स्वास्थ्य सुविधाओं को भी रेखांकित किया गया है।
- सबसे बड़ी बात है कि ये जन-आंदोलन ऐसी सरकार के विकास-मॉडल के विरूद्ध चलाए जा रहे हैं, जो लगातार एक दशक से अधिक समय तक वहाँ राज कर चुकी है। दरअसल, जन-समाज का महत्व इस बात में है कि वह पूरे समाज की बुनियादी

आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अपने बीच के छोटे-मोटे मनमुटावों या अहम् को नगण्य बना दे। गुजरात के जन-आंदोलनों ने भारत की मौलिक स्वतंत्रता को प्राप्त करने की दिशा में एक अलख जगा दी है और इसमें हम सबके सहयोग की आवश्यकता है।

'द हिंदू' में नीरा चंडोक के लेख पर आधारित।